सुमित्रानन्दन पन्त (१९००-१९७७)

१ - **ग्राम श्री**

फैली खेतों में दूर तलक
मखमल की कोमल हरियाली,
लिपटीं जिससे रवि की किरणें
चाँदी की सी उजली जाली !
तिनकों के हरे हरे तन पर
हिल हरित रुधिर है रहा झलक,
श्यामल भू तल पर झुका हुआ
नभ का चिर निर्मल नील फलक !

रोमांचित सी लगती वसुधा
आई जौ गेहूँ में बाली,
अरहर सनई की सोने की
किंकिणियाँ हैं शोभाशाली !
उड़ती भीनी तैलाक्त गंध
फूली सरसों पीली पीली,
लो, हरित धरा से झाँक रही
नीलम की कलि, तीसी नीली !

रंग रंग के फूलों में रिलमिल
हँस रही सखियाँ मटर खड़ी,
मखमली पेटियों सी लटकीं
छीमियाँ, छिपाए बीज लड़ी !
फिरती हैं रंग रंग की तितली
रंग रंग के फूलों पर सुंदर,
फूले फिरते हैं फूल स्वयं
उड़ उड़ वृंतों से वृंतों पर !

अब रजत स्वर्ण मंजरियों से
लद गई आम्र तरु की डाली,
झर रहे ढाक, पीपल के दल,
हो उठी कोकिला मतवाली !
महके कटहल, मुकुलित जामुन,
जंगल में झरबेरी झूली,
फूले आड़ू, नींबू, दाड़िम,
आलू, गोभी, बैंगन, मूली !

पीले मीठे अमरूदों में
अब लाल लाल चित्तियाँ पड़ी,
पक गए सुनहले मधुर बेर,
अँवली से तरु की डाल जड़ी !

लहलह पालक, महमह धनिया,
लौकी औ' सेम फलीं, फैलीं,
मखमली टमाटर हुए लाल,
मिरचों की बड़ी हरी थैली !

बालू के साँपों से अंकित
गंगा की सतरंगी रेती
सुंदर लगती सरपत छाई
तट पर तरबूजों की खेती ;
अँगुली की कंघी से बगुले
कलँगी सँवारते हैं कोई,
तिरते जल में सुरखाब, पुलिन पर
मगरौठी रहती सोई !

हँसमुख हरियाली हिम-आतप
सुख से अलसाए-से-सोए,
भीगी अँधियाली में निशि की
तारक स्वप्नों में-से-खोए-
मरकत डिब्बे सा खुला ग्राम-
जिस पर नीलम नभ आच्छादन-
निरुपम हिमांत में स्निग्ध शांत
निज शोभा से हरता जन मन !

२ - **चरखा गीत**

भ्रम, भ्रम, भ्रम -
घूम, घूम, भ्रम भ्रम रे चरखा
कहता : "मैं जन का परम सखा,
जीवन का सीधा-सा नुसखा -
श्रम, श्रम, श्रम !"
कहता : "हे अगणित दरिद्रगण !
जिनके पास न अन्न, धन, वसन,
मैं जीवन उन्नति का साधन -
क्रम, क्रम, क्रम !"

भ्रम, भ्रम, भ्रम -
"धुन रूई, निर्धनता दो धुन,
कात सूत, जीवन पट लो बुन ;
अकर्मण्य, सिर मत धुन, मत धुन,
थम, थम, थम !"
"नग्न गात यदि भारत मा का,

तो खादी समृद्धि की राका,
हरो देश की दरिद्रता का
तम, तम, तम !"

भ्रम, भ्रम, भ्रम -
कहता चरखा प्रजा तंत्र से :
"मैं कामद हूँ सभी मंत्र से" ;
कहता हँस आधुनिक यंत्र से :
"नम, नम, नम !"

"सेवक पालक शोषित जन का,
रक्षक मैं स्वदेश के धन का,
कातो हे, काटो तन मन का
भ्रम, भ्रम, भ्रम !"

३ - भारत माता

भारतमाता
ग्रामवासिनी ।
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल,
गंगा यमुना में आँसू जल,
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी ।

दैन्य जड़ित अपलक नत चितवन,
अधरों में चिर नीरव रोदन,
युग युग के तम से विषण्णा मन,
वह अपने घर में
प्रवासिनी ।

तीस कोटि संतान नग्न तन,
अर्ध क्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन,
मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन,
नत मस्तक
तरु तल निवासिनी !

स्वर्ण शस्य पर-पदतल लुंठित,
धरती सा सहिष्णु मन कुंठित,
क्रंदन कंपित अधर मौन स्मित,
राहु ग्रसित
शरदेन्दु हासिनी ।

चिंतित भृकुटि क्षितिज तिमिरांकित,
नमित नयन नभ वाष्पाच्छादित,
आनन श्री छाया शशि उपमित,
ज्ञान मूढ़,
गीता प्रकाशिनी !

सफल आज उसका तप संयम,
पिला अहिंसा स्तन्य सुधोपम,
हरती जन मन भय,भव तम भ्रम,
जग जननी
जीवन विकासिनी !

४ - मुक्ताभ

गाँव के लड़के

मिट्टी से भी मटमैले तन,
अधफटे, कुचैले, जीर्ण वसन, -
ज्यों मिट्टी के हों बने हुए
ये गँवई लड़के - भू के धन !

कोई खंडित, कोई कुंठित,
कृश बाहु, पसलियाँ रेखांकित
टहनी सी टाँगें, बढ़ा पेट
टेढ़े-मेढ़े विकलांग घृणित ।

विज्ञान चिकित्सा से वंचित,
ये नहीं धात्रियों से रक्षित,
ज्यों स्वास्थ सेज हो, ये सुख से
लोटते धूल में चिर परिचित !

पशुओं सी भीत मूक चितवन,
प्राकृतिक स्फूर्ति से प्रेरित मन,
तृण तरुओं-से उग-बढ़, झर-गिर,
ये ढोते जीवन क्रम के क्षण !

कुल मान न करना इन्हें वहन,
चेतना ज्ञान से नहीं गहन,
जग जीवन धारा में बहले,
ये मूक, पंगु बालू के कण !

कर्दम में पोषित जन्मजात,
जीवन ऐश्वर्य न इन्हें ज्ञात,
ये सुखी या दुखी ? पशुओं-से
जो सोते जगते साँझ प्रात !

इन कीड़ों का भी मनुज बीज,
यह सोच हृदय उठता पसीज,
मानव प्रति मानव की विरक्ति
उपजाती मन में क्षोभ खीझ !

५ - रूप निर्माण

रम्य रूप निर्माण करो हे,
रम्य वस्त्र परिधान,

रम्य बनाओ गृह, जनपथ को,
रम्य नगर, वनस्थान ।

रम्य सृष्टि हो रूप जगत की,
रम्य धरा शृंगार,
बाह्य रूप हो रम्य वस्तु का
होंगे रम्य विचार ।

रम्य रूप हो मानवता का,
अखिल मनोरम वेश,
भाषा रम्य मनुजता का मन,
वहन करे नि:शेष ।

भेद जनित माया, माया का,
रूप करो विन्यास,
मानव संस्कृति में विरोध डूबें,
हो ऐक्य प्रकाश ।

रूप रचो भव मानवता का,
रूप भाव आधार,
रम्य रूप मानव समूह हो,
जीवन रूप विचार ।

६ - आस्था

ओ मानव मन

ओ मानव मन,
जन-भू-जीवन में चाहो यदि
नया संतुलन,
नव स्वर संगति,
नई प्रगति या,
उठो, नई मानवता की
भू पर विचरो तुम !

आस्था का कर पकड़
चढ़ो अंत: शिखरों पर,
नव शोभा गरिमा
वितरित करने जन-भू पर !
अर्पित कर भूमा को जीवन -
मनुष्यत्व के
गौरव वाहक बनो विश्व में, -
आत्मजयी बन !

७ -

ग्राम वधू

जाती ग्राम वधू पति के घर !
मा से मिल, गोदी पर सिर धर,
गा-गा बिटिया रोती जी भर,
जन-जन का मन करुणा कातर,
जाती ग्राम वधू पति के घर !
भीड़ लग गई लो स्टेशन पर,
सुन यात्री ऊँचा रोदन स्वर
झाँक रहे खिड़की से बाहर,
जाती ग्राम वधू पति के घर !
चिन्तातुर सब, कौन गया मर,
पहियों से दब, कट पटरी पर,
पुलिस कर रही कहीं पकड़-धर !
जाती ग्राम वधू पति के घर !
मिलती ताई से गा रोकर,
मौसी से वह आपा खोकर,
बारी-बारी रो, चुप होकर,
जाती ग्राम वधू पति के घर !

बिदा फुआ से ले हा-हाकर,
सखियों से रो धो बतियाकर,
पड़ोसिनों पर टूट, रँभाकर,
जाती ग्राम वधू पति के घर !
मा कहती-रखना सँभाल घर,
मौसी-धनि, लाना गोदी भर,
सखियाँ-जाना हमें मत बिसर,
जाती ग्राम वधू पति के घर !
नहीं आँसुओं से आँचल तर,
जन बिछोह से हृदय न कातर,
रोती वह, रोने का अवसर,
जाती ग्राम वधू पति के घर !
लो अब गाड़ी चल दी भर्-भर्,
बतलाती धनि पति से हँसकर
सुस्थिर डिब्बे के नारी नर,
जाती ग्राम वधू पति के घर !
रोना गाना यहाँ चलन भर,
आता उसमें उभर न अन्तर,
रूढ़ि यन्त्र जन जीवन परिकर,
जाती ग्राम वधू पति के घर !